P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-9, ISSUE-3 February -2021
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

# समकालीन कविता में बाजारवाद का बढ़ता प्रभाव

## Increasing Influence of Marketism in Contemporary Poetry

Paper Submission: 02/02/2021, Date of Acceptance: 22/02/2021, Date of Publication: 24/02/2021

**शकुंतला देवी राणा**
सहायक आचार्य,
हिन्दी विभाग,
अटल बिहारी वाजपेयी
राजकीय महाविद्यालय,
बंगाणा, जिला ऊना
हिमाचल प्रदेश, भारत

सन् 1960 के बाद की कविता समकालीन कविता कही जाती है। समकालीनता मनुष्य को उसके सम्पूर्ण परिवेश के साथ पहचानती है, इसलिए समकालीन कवि अपने समय की विसंगति, विडम्बना और विद्रूपताओं को पहचान कर उसका यथार्थ चित्रण करते हैं। समकालीन कविता में वर्तमान समय का बोध है, इसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है।

बाजार और भूमंडलीकरण का प्रभाव राजनीति से लेकर साहित्य तक गहरा हो चला है। बाजारवाद ने समकालीन कविता को प्रभावित किया है। पूंजीवाद का आक्रमण समकालीन कविता में दिखाई देता है। बाजार एक जरूरी चीज है पर बाजारवाद जब हावी होकर सब जगह छा जाता है, तब चिंता बढ़ जाती है। आज बाजारवाद के प्रभाव से व्यक्ति 'वस्तु' में तब्दील हो गया है। वस्तु का मूल्य होता है। आज कोई ऐसी चीज नहीं रही, जो बिकाऊ नहीं। बाजारवाद के कारण सारी मानवीय संवेदनाएँ मर रही है। समकालीन कवि बाजारवाद के प्रभावों को कविता में चित्रित कर रहा है। घोर भौतिकता व बाजारवाद के बावजूद कवि निराश नहीं है। वह इससे लड़ने के लिए तैयार है। समकालीन कविता जहाँ बाजारवाद के खतरों के प्रति समाज को जाग्रत कर रही है, वहीं उससे लड़ने की प्रेरणा भी दे रही है।

The post-1960 poem is called contemporary poetry. Contemporaneity identifies man with his entire environment, so contemporary poets recognize the anomalies, irony, and rebellions of their time and portray them realistically. Contemporary poetry has a sense of the present times, in it is the scenario of real man thinking while living, struggling, fighting, dodging, agonizing, thundering and stumbling.

The impact of market and globalization has deepened from politics to literature. Marketism has influenced contemporary poetry. The invasion of capitalism appears in contemporary poetry. The market is an important thing, but when marketism dominates and dominates everywhere, then the concern increases. Today, due to the influence of marketism, a person has become a 'commodity'. The commodity has value.

Today there is no such thing which is not for sale. All human sensibilities are dying due to marketism. The contemporary poet is portraying the effects of marketism in poetry. The poet is not disheartened in spite of his materialism and marketism. He is ready to fight it. While contemporary poetry is awakening the society to the dangers of marketism, it is also inspiring to fight it.

**मुख्य शब्द :** हिन्दी साहित्य, जीवन शैली, विषयवस्तु, समकालीन कविता, मानवीय संवेदना का क्षरण, ठोस स्वरूप, समय और समाज, साठ का दशक, काल प्रवाह, बाजारवाद, भूमंडलीकरण, चुनौती, पैसे की माया, जबरदस्त जंग, वस्तु में तब्दील, उपभोक्तावाद।

Hindi literature, life style, content, contemporary poetry, erosion of human senses, concrete form, time and society, sixties, period flow, marketism, globalization, challenge, maya of money, tremendous war, transformed into commodity, consumerism.

**प्रस्तावना**

बाजार एक जरूरी चीज है और यह वर्षों से हमारे यहाँ रहा है, पर बाजार ने हमें कभी डराया नहीं। आज बाजार भौतिक रूप से आगे बढ़कर 'बाजारवाद' के रूप में मानसिकता पर छा रहा है। बाजार ही सब चीजों और मूल्यों को नियंत्रित करने लगा है, तब बाजार से डरने की जरूरत हो जाती है।

आज बाजार के बहाने दूसरे देश व संस्कृति भी यहाँ घुसपैठ कर रहे हैं। यह चिंता कविता में व्यक्त हो रही है। समकालीन कवि इस चिंता को व्यक्त कर समाज को सजग कर रहा है।

**साहित्यावलोकन**

इस शोध से पूर्व इस कार्य पर कुछ साहित्य लेखन एवं शोध कार्य हो चुका है। उसमें बाजारवाद, भूमंडलीकरण, आर्थिक, उदारीकरण, बहुराष्ट्रीय साम्राज्यवाद आदि विषयों पर लिखा गया है। इस विषय से सम्बन्धित जो साहित्य मिलता है, वह इस प्रकार है–

1. भाषा और भूमंडलीकरण–डॉ. मैनेजर पाण्डेय, शब्द संधान, दिल्ली, 2008 ई.
2. स्वातंत्र्योतर हिन्दी कविता – विविध परिदृश्य – जगदीश चतुर्वेदी, मैकमिलन, दिल्ली।
3. उत्तर आधुनिकता – एक साहित्यिक विमर्श – सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. बाजार का प्रपंच और हिन्दी, अक्षर पर्व, सं. सर्वमित्रा सूरजन, रायपुर, मई 2007
5. भूमंडलीकरण की चुनौतियां – सच्चिदानंद सिन्हा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2003 ई.
6. स्मकालीन हिन्दी कविता के विविध आयाम – अंजनी कुमार दुबे, पूर्वांचल प्रकाशन, दिल्ली, 1998 ई.
7. भारत का भूमंडलीकरण – अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2003 ई.
8. पापुलर कल्चर – सुधीश पचौरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
9. मीडिया और बाजारवाद – जवाहर कौल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2002 ई.

इस प्रकाशित साहित्य के साथ विश्वविद्यालयों में शोध कार्य भी हुआ है। इस शोध कार्य में बाजारवाद, भूमंडलीकरण पर चर्चा हुई है। आलोच्य शोध में बाजारवाद के प्रभावों को समकालीन कविता में देखा गया है और उनकी चिंता को समझा गया है। बाजार के खतरों को देखते हुए उससे मुकाबला करने का संकल्प भी कविता के द्वारा दिखाया गया है।

**शोध प्रविधि**

इस शोध कार्य में समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को समझना है तथा वर्तमान समय और समाज में बाजारवाद के प्रभावों का कविता में चित्रण का अध्ययन करना है। इस हेतु सम्बन्धित आंकड़ों का संकलन एवं विश्लेषण साहित्यिक अध्ययन द्वारा किया गया। आगमन–निगमन पद्धति से विश्लेषण कर आंकड़े जुटाए गए। असहगामी अवलोकन पद्धति एवं सापेक्षवादी मीमांसा पद्धति का उपयोग कर अंतिम निष्कर्षो की स्थापना की गई।

**अध्ययन का उद्देश्य**

इस शोध कार्य का उद्देश्य समकालीन हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का अध्ययन कर जानना है कि समकालीन कविता में समय और समाज कैसी स्थिति वर्णित है? इस समय समाज में बाजारवाद के प्रभावों को लक्षित किया जा रहा है अतः बाजारवाद के प्रभावों का कविता में किस प्रकार का चित्रण हो रहा है, यह जानना भी वांछित है। बाजारवाद ने हर मूल्य और सिद्धान्त को वस्तु में बदल कर रख दिया है। ऐसी वस्तु में, जिसका मूल्य लगाया जा सके। ऐसी स्थिति में मूल्यों की पुनर्स्थापना एवं बाजारवाद के प्रभावों से लड़ना भी समय की एक जरूरत है। यह शोध कार्य इस जरूरत को सामने लाता है और मनुष्य और समाज को जाग्रत करता है। साहित्य की वर्तमान स्थिति को जानना, समाज की वर्तमान दशा को जानना और साहित्य द्वारा समाज की खराब होती दशा को सही दिशा देना इस शोध कार्य का उद्देश्य है।

**निष्कर्ष**

समकालीन कविता अपने समय और समाज को चित्रित कर रही है। इस समय बाजारवाद का प्रभाव सब जगह व्याप्त है। बाजारवाद, भौतिकता और भूमंडलीकरण ने सब मूल्यों और सिद्धांतों को पण्य बना डाला है। समकालीन कविता में भी बाजारवाद के खतरों की चिंता दिखाई देती है। समकालीन कवि बाजारवाद के प्रति जनमानस को सजग करने में लगा है। इसके साथ कवि बाजारवाद से घिरकर निराश नहीं हो रहा, बल्कि उसे लगता है कि कविता द्वारा ही बाजारवाद से लड़ा जा सकता है।

**विषय उपस्थापन**

हिन्दी साहित्य में आधुनिक संवेदना का सूत्रपात वैसे तो भारतेन्दु युग से माना जाता है, लेकिन आधुनिक चिंतन में संचार के प्रत्यक्ष–परोक्ष माध्यमों के प्रचार–प्रसार के कारण हमारी जीवन शैली और प्रवृत्तियों ने कविता की विषयवस्तु को भी बदल दिया। समकालीन कविता में मानवीय संवेदना का क्षरण और नैतिक मूल्यों का विध्वंस स्पष्टतया परिलक्षित होने लगा। सन् 1960 के बाद समकालीन कविता अपने समय की केन्द्रीय धड़कन से तो जुड़ी लेकिन विभिन्न काव्यान्दोलनों की भरमार के कारण उसका कोई ठोस स्वरूप निश्चित नहीं हो सका। फिर भी इसने समय और समाज के संदर्भ में नई संवेदनाओं को अवश्य जोड़ा।

समकालीन कविता का आरम्भ हम बड़े–बड़े रूप में साठ के दशक के मध्य से मान सकते हैं। इसी समय सीमा के प्रचलन के कारण ही इसका प्रचलित नाम साठोतरी कविता' भी रहा है। रामदरश मिश्र कहते हैं– ''मेरी स्पष्ट धारणा है कि सन् साठ के बाद कविता में जो स्वर उगे हैं वे नई कविता में बीज रूप में वर्तमान रहे हैं और गौण भाव से प्रस्फुटित होते रहे हैं। ये स्वर नई कविता के मूलाधार नहीं रहे हैं किन्तु नई कविता से सर्वथा विच्छिन्न या विरोधी स्वर के रूप में उनकी व्याख्या नहीं हो सकती, जैसा कि अकविता वाले कवि करते हैं।''[1]

साहित्य के क्षेत्र में समकालीन शब्द का प्रयोग पहले सीमित अर्थ में समसामयिक तुलना में होता था बाद में समकालीन शब्द का प्रयोग वर्तमान के लिए किया जाने लगा अर्थात् जो वर्तमान में स्थित है और सार्थक है, वह समकालीन है। समकालीनता मनुष्य को उसके सम्पूर्ण परिवेश के साथ पहचानती है, इसलिए समकालीन कवि अपने समय की विसंगति, विडम्बना और विद्रूपताओं को पहचानकर उनका यथार्थ चित्रण करते हैं। इस संदर्भ में

रघुवीर सहाय कहते हैं– ''मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है।'' समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को उद्घाटित करते हुए डॉ. विश्वंभर उपाध्याय लिखते हैं– ''समकालीन कविता में जो हो रहा है, उसका सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमानकाल का बोध हो सकता है, क्योंकि इसमें जीते, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य है। आज की कविता में काल अपने गत्यात्मक रूप में ठहरे हुए क्षण या क्षणांश के रूप में नहीं है। यह काल क्षण की कविता नहीं, 'काल प्रवाह' की, अघात और विस्फोट की कविता है।''[2]

आज बाजारवाद के साथ भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण, बहुराष्ट्रीय साम्राज्यवादी नीतियाँ वर्तमान पर हावी है। राजनीति से लेकर साहित्य तक इसका गहरा प्रभाव व्याप्त है। ये तत्त्व ही कविता के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। बाजार में केवल पैसे की माया है। लाभ कमाने के लिए बाजारवाद अमूल्य चीजों को भी बिकाऊ बनाकर छोड़ डालता है। बाजार का नारा है कि जो बिक नहीं सकता, वह चल नहीं सकता। वर्तमान सभ्यता के इस स्वरूप को समकालीन कविता चित्रित कर रही है। पूंजीवाद के आक्रमण को ओम भारती की कविता में देखा जा सकता है –

''भारत के हाटों में शुरू हो चुकी है/दुनिया की सबसे जबरदस्त जंग/बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का मिला जुला प्रयोजन / मिली – जुली भव्य और मारक लड़ाई/अनेक मोर्चे खुले हैं साथ।''[3]

आज के दौर में बाजार एक अनिवार्य स्थिति है और हम उसे शतुर्मुर्गी ढंग से अपनाने से बेहतर है कि उसका स्वागत करें। आज हम एक वस्तु में तब्दील हो गए हैं। कवि सदानंद शाही तो मनुष्य को आलू की संज्ञा देते हुए कहते हैं– ''हम आलू हैं, किसी भी मंडी में बेचे जा सकते हैं/बेचे और खरीदे जा सकते हैं/ जरूरत पर राई और जरूरत पर पर्वत हो सकते हैं/ हम वैश्विक गाँव के वासी हैं/हमारे ऊपर कोई लेबल नहीं/इसलिए किसी मंडी, किसी बाजार में/किसी लेबल के साथ बिक सकते हैं/बस दाम मिलना चाहिए।''[4] बाजार हमेशा से रहा है। पर बाजार से कभी इतना डर नहीं रहा। बाजार से डरना तभी जरूरी होता है जब वह चीजों को ही नहीं, मूल्यों को भी पण्य बना डाले। कवि कहता है– ''बाजार में सब कुछ बिकाऊ है/बिकाऊ है, हमारी मूल्यवान खनिज सम्पदा/वनौषधियाँ और दुर्लभ बगीचे, दरखत मैदान और जलाशय/ये सब और सब कुछ बिकाऊ है/हमारी युवा और विवाह योग्य लड़कियाँ/बिकाऊ है हमारी बोझिल, पुरातन कबीलाई जड़ें/जिन्होंने हमारी तरक्की के चक्कों को जकड़ रखा है/बिकाऊ है, हमारा स्वाभिमान, हमारी मान्यताएँ, हमारी संस्कृति/हमारा लज्जा भाव, हमारी सामूहिक चेतना।''[5]

कविता का भी बाजार से रिश्ता रहा है। कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ' के माध्यम से बाजार के साथ जिस विद्रोहमूलक रिश्ते की शुरूआत की, वह आगे बढती रही। पहले बाजार एक सामाजिक–आर्थिक इकाई था, जो आज अपने आप में एक सत्ता के रूप में स्थापित हो चुका है। उपभोक्तावाद में जीवन की महत्ता और मूल्यों को वस्तुओं में तब्दील कर दिया है। मनुष्य भी एक वस्तु बन चुका है। स्वप्निल श्रीवास्तव लिखते हैं–

''एक सुबह उठा और पाया/सारी दुनिया बन चुकी है बाजार/सब बाजार की भाषा बोल रहे हैं/ केवल क्रेता–विक्रेता बचे हुए हैं/लोग मेरे साथ इस तरह का/बर्ताव कर रहे हैं जैसे मैं कोई/वस्तु हूँ।''[6]

इसी बाजारवाद के कारण मानवीय संवेदनाएँ मरती जा रही है। पूंजीवादी शक्तियाँ हावी हो रही हैं। आधुनिकता तथा नैतिकता ने अनुभूति की पवित्रता, आस्था, ममता, हृदय की स्निग्धता तथा भावुकता को जड़ कर दिया है। शहरी दुनिया में मानवीय भावों का, हमारी आत्मीय रागात्मकता का अभाव है। यही चित्रण समकालीन कविता में मिलता है–

''गठरी लेकर चढी हुई बूढी औरत/चलती बस से गिर गई/गिरने दो/पड़ोसी का पिता खांस–खांस कर मर गया/मरने दो/चांदनी चौक के दंगे में उजड़ गए दो घर/उजड़ने दो/सड़क पर चवन्नी पड़ी/वह झट से डालता है/जेब में हाथ/कहीं उसकी जेब तो नहीं फटी है।''[7]

इस प्रकार समकालीन कवि बाजारवाद के प्रभावों को समकालीन कविता में चित्रित कर रहा है। वह समाज को इस दिशा में अपनी चिंताएँ बता रहा है कि यह समाज के लिए ठीक नहीं है –

''कविता में कहने की आदत नहीं पर कह दूँ/वर्तमान समाज चल नहीं सकता/पूंजीवाद से जुड़ा हृदय बदल नहीं सकता।''[8]

कवि समय और समाज की चिंताओं को व्यक्त कर व्यक्ति चेतना को जगाना चाहता है। समकालीन कवि आज घोर भौतिकतावादी युग और बाजारवाद के प्रभाव में भी निराश नहीं है। वह अंदर से कहीं तैयार है, संघर्ष के लिए। वह कहता है–

''कुंडियां खटखटाने से दरवाजे कोई नहीं खोलता/काटनी पड़ती है अर्गलाएँ/अपने ही हाथों से।''[9]

कह सकते हैं कि समकालीन कविता बाजारवाद के प्रभावों एवं खतरों को जहां एक ओर रेखांकित करती है, वहीं दूसरी ओर नये भविष्य की आशा भी जगाए हुए है। आज बाजारवाद के कारण मानवीय संवेदनाएँ मर रही है। समाज में मूल्य समाप्त हो रहे हैं, वहां कविता का कार्य बढ जाता है–

''कविता/हर ऐसी जगह मौजूद होती है/जहाँ आदमी हो/और जिंदगी बदलने की/ छटपटाहट मौजूद हो/कविता आदमी होने पर अहसास भी है/और जिंदगी है/ और जिंदगी बदलने का माद्दा भी।''[10]

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. *रामदरश मिश्र – आधुनिक हिन्दी कविता : सर्जनात्मक संदर्भ, 1986 ई., पृष्ठ–76*
2. *वही, पृष्ठ–18*
3. *ओम भारती – जोखिम से कम नहीं, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1999 ई., पृष्ठ–60*
4. *सदानंद शाही – वर्तमान साहित्य, अप्रैल–जून, 1997 ई., पृष्ठ–96*

5. *सं. उर्मिला मिश्रा – समकालीन हिन्दी कविता और बाजारवाद, मीरा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, संगरिया, (हनुमानगढ़) 2010 ई., पृष्ठ–74*
6. *स्वप्निल श्रीवास्तव – पल प्रति पल, अंक 42, पृष्ठ–169*
7. *विनोददास – खिलाफ हवा के गुजरते हुए, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1989 ई., पृष्ठ–22*
8. *मुक्तिबोध – अंधेरे में/भाग–7/*Kavitakosh.org
9. *हर्ष – समय से पहले, सामयिक प्रकाशन, कलकता, 1909 ई., पृष्ठ–25*
10. *नरेन्द्र – कविता, वागर्थ, अंक 162, पृष्ठ–45*